

श्रीमद्भागवत स्कन्ध 8 अध्याय 1: मन्वन्तरो का वर्णन

13 September 2026



सुनन्दा नदी के तट पर, एक सम्राट जिसने राज्य त्याग दिया है, सौ वर्षों तक एक ही पाँव पर खड़ा रहता है — और उसके मुख से वह प्रार्थना फूटती है जो स्वयं भगवान् को उसकी रक्षा के लिए बुला लाती है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं तथा शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। इस अध्याय के साथ हम अष्टम स्कन्ध का आरम्भ करते हैं — यह ग्रन्थ समस्त शास्त्रों की कुछ सर्वाधिक प्रिय कथाओं से भरा है: गजेन्द्र का उद्धार, क्षीरसागर का मन्थन, मोहिनी का मनोहर प्रकट्य, तथा वामन रूप में भगवान् का अवतरण। किन्तु इनके प्रकट होने से पूर्व, श्रीशुकदेव गोस्वामी वह विशाल रंगमंच रचते हैं जिस पर यह सब घटित होता है: मन्वन्तर, अर्थात् महान् विश्व-युग, जिनमें से प्रत्येक का अधिपति एक मनु होता है — मानवजाति का आदिपुरुष तथा धर्म-नियन्ता।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण

- स्कन्ध: 8 (अष्टम स्कन्ध)
- अध्याय: 1 (प्रथम प्रवचन)
- अध्याय शीर्षक: मन्वन्तरो का वर्णन
- मुख्य वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए — यह सम्पूर्ण कथा सूत गोस्वामी द्वारा शौनक तथा नैमिषारण्य के ऋषि-समुदाय को सुनाई जाती है
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित (श्रीशुकदेव की कथा के भीतर); नैमिषारण्य के ऋषिगण (सूतजी से सुनते हुए)
- मुख्य स्थान: गंगा-तट, जहाँ उपवासरत राजा परीक्षित श्रीशुकदेव से भागवत श्रवण करते हैं; कथा के भीतर, क्रमिक युगों के वन तथा नदी-तट
- मुख्य विषय-वस्तु: मन्वन्तरो का स्वरूप, प्रथम चार मनुओं तथा उनके युगों का वर्णन, और प्रत्येक युग में लोक-रक्षा हेतु भगवान् का पुनः-पुनः अवतरण
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 8, अध्याय 1, श्लोक 1-33
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

संसार के युगों के विषय में एक राजा का प्रश्न

पूर्व स्कन्धों में स्वायम्भुव मनु तथा मरीचि आदि ऋषियों से उत्पन्न सृष्टिकर्ताओं की महान् वंश-परम्परा का पूरा वृत्तान्त सुन चुकने के पश्चात्, अब राजा परीक्षित और अधिक सुनने के लिए उत्सुक हैं। वे श्रीशुकदेव से अन्य मनुओं का भी वर्णन करने की प्रार्थना करते हैं — क्योंकि, वे कहते हैं, विद्वान् प्रत्येक मन्वन्तर को श्रीहरि के किसी विशेष अवतार तथा लीला से जोड़ते हैं। ब्रह्माण्ड के रक्षक भगवान् ने प्रत्येक अतीत युग में वस्तुतः क्या किया, अभी क्या कर रहे हैं, और आने वाले युगों में क्या करेंगे?

श्रीराजोवाच

स्वायम्भुवस्येह गुरो वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः ।

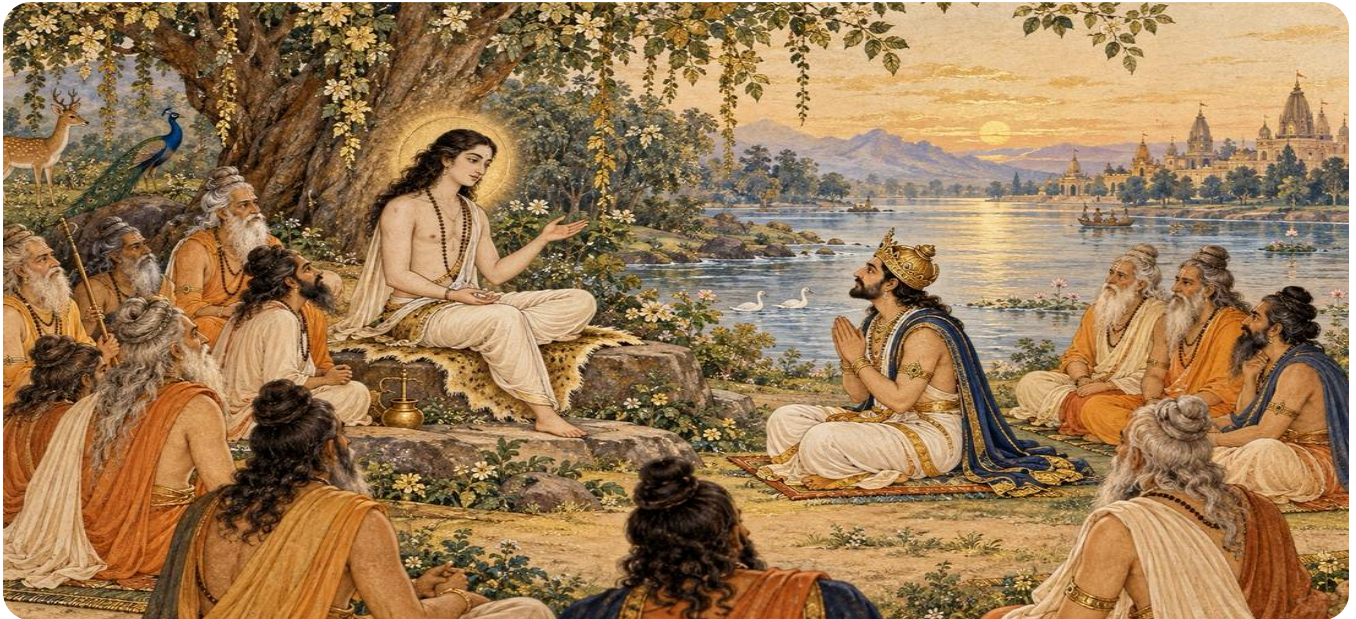
यत्र विश्वसृजां सर्गो मनूनन्यान्वदस्व नः ॥ १ ॥

śrī-rājovāca svāyambhuvasyeha guro vaṁśo 'yaṁ vistarāc chrutaḥ yatra viśva-sṛjāṁ sargo manūn anyān vadasva naḥ

अर्थ: राजा ने कहा: हे गुरुदेव! मैंने स्वायम्भुव मनु का वह वंश विस्तारपूर्वक सुन लिया, जिसमें ब्रह्माण्ड के सृष्टिकर्ता प्रकट हुए; अब कृपया हमें अन्य मनुओं का भी वर्णन सुनाइए। (स्कन्ध 8, अध्याय 1, श्लोक 1)

श्रीशुकदेव उत्तर देते हैं कि वर्तमान कल्प में — जो ब्रह्मा के एक दिन के तुल्य है — स्वायम्भुव से आरम्भ होकर छह मनु बीत चुके हैं। इनमें से प्रथम का वर्णन वे पहले ही कर चुके हैं, साथ ही देवताओं, असुरों तथा मनुष्यों की सृष्टि का भी; तथा यह भी कि भगवान् ने किस प्रकार मनु की पुत्रियों के पुत्र-रूप में जन्म लिया — अकूति से यज्ञ के रूप में, धर्मपूर्ण कर्म सिखाने हेतु, तथा देवहूति से कपिल के रूप में, आध्यात्मिक ज्ञान

सिखाने हेतु। कपिल की शिक्षा का वर्णन पहले ही कर चुकने पर, अब श्रीशुकदेव भगवान् यज्ञ के कार्यों तथा उसके पश्चात् आने वाले युगों की कथा आरम्भ करते हैं।



गंगा के तट पर उपवासरत राजा परीक्षित श्रीशुकदेव गोस्वामी से अतीत, वर्तमान और भावी युगों के मनुओं तथा प्रत्येक में भगवान् के अवतरण का वर्णन करने की प्रार्थना करते हैं (श्लोक 1-3)।

गंगा-तट पर, उपवासरत राजा परीक्षित श्रीशुकदेव गोस्वामी से अतीत, वर्तमान तथा भावी युगों के मनुओं और प्रत्येक में भगवान् के अवतार का वर्णन करने की प्रार्थना करते हैं (श्लोक 1-3)।

प्रथम मनु और उनकी सौ वर्षों की तपस्या

अन्ततः विषय-भोगों से विरक्त होकर, शतरूपा के पति सम्राट् स्वायम्भुव मनु ने अपना राज्य त्याग दिया और अपनी पत्नी के साथ तपस्या हेतु वन को प्रस्थान किया। सुनन्दा नदी के तट पर वे सौ वर्षों तक एक ही पाँव पर खड़े रहे, और वहाँ उन्होंने अत्यन्त गहन प्रार्थना उच्चारित की — एक ऐसी प्रार्थना जो उपनिषदों के मर्म से ली गई है। उन्होंने विस्मय व्यक्त किया कि जीव भगवान् को नहीं जानता, यद्यपि भगवान् प्रत्येक जीव को जानते हैं; कि सम्पूर्ण जड़ जगत् केवल उनकी उपस्थिति से चेतनायुक्त होता है, जबकि वे स्वयं स्वभावतः चेतन हैं और जगत् के सोते रहने पर भी साक्षी-रूप में जागते रहते हैं।

जो कुछ भी है, चेतन या अचेतन, मनु ने प्रार्थना की, वह सब उस विराट् चैतन्य से व्याप्त है; अतः मनुष्य को उसी पर जीवन-निर्वाह करना चाहिए जो भगवान् ने उसे प्रदान किया है, और किसी अन्य के धन की कभी अभिलाषा नहीं करनी चाहिए। उन्होंने उस स्वयं-प्रकाश भगवान् की शरण ली, जो आदि, मध्य तथा अन्त से रहित हैं, जिनकी दृष्टि में न कोई मित्र है न शत्रु। उन्होंने यह भी सिखाया कि विद्वज्जन प्रायः साधारण मनुष्यों को पहले शास्त्रोक्त कर्तव्यों में प्रवृत्त करते हैं, क्योंकि अनुशासित कर्तव्य-पालन से गुज़रे बिना कोई भी सीधे उस कर्म तक नहीं पहुँच सकता जो आगे कोई बन्धन उत्पन्न नहीं करता। और युगों को पार करती हुई एक शिक्षा में मनु ने कहा कि भगवान्, यद्यपि कर्म में प्रवृत्त होते हैं, कभी उससे

बँधते नहीं, क्योंकि वे आत्म-तृप्त तथा समस्त कामनाओं से रहित हैं — और जो उनके पदचिह्नों पर चलते हुए अपने कर्म उन्हें समर्पित करते हैं, वे भी मुक्त हो जाते हैं। उसी भगवान् की, जो अहंकार-रहित होकर कर्म करते हैं तथा अपने ही आचरण से मानवता को शिक्षा देते हैं, मनु ने शरण ग्रहण की।

तमीहमानं निरहङ्कृतं बुधं
निराशिषं पूर्णमनन्यचोदितम् ।
नृञ् शिक्षयन्तं निजवर्त्मसंस्थितं
प्रभुं प्रपद्येऽखिलधर्मभावनम् ॥ १६ ॥

tam ihamānam nirahaṅkṛtaṁ budhaṁ nirāśiṣaṁ pūrṇam ananya-coditam nṛṇ śikṣayantaṁ nija-vartma-saṁsthitam prabhuṁ prapadye 'khila-dharma-bhāvanam

अर्थ: मैं उस भगवान् की शरण लेता हूँ — जो कर्मशील होते हुए भी अहंकार-रहित हैं, सर्वज्ञ, निष्काम, पूर्ण, स्वयं-प्रेरित, तथा जो अपने ही निर्धारित मार्ग पर स्वयं चलकर मानवता को शिक्षा देते हैं, समस्त धर्म के उद्गम एवं आश्रय हैं। (स्कन्ध 8, अध्याय 1, श्लोक 16)

इस सरल शिक्षा के मूल में मात्र संयम से कहीं गहरी बात निहित है। चूँकि वही एक चैतन्य समस्त प्राणियों तथा समस्त तत्त्वों में व्याप्त है, अतः इस ब्रह्माण्ड में अन्ततः कुछ भी किसी व्यक्ति, परिवार अथवा राष्ट्र की सम्पत्ति नहीं है — सिंहासन के नीचे की भूमि, कोष का धन, यहाँ तक कि जिसे हम अपना शरीर कहते हैं, ये सब उसी भगवान् की धरोहर मात्र हैं जिन्होंने इन्हें रचा है। जो जीवन-निर्वाह भर से अधिक कुछ नहीं लेता, वह उस धरोहर का सच्चा न्यासी बना रहता है; और जो अपने भोग हेतु उससे अधिक की माँग करता है, वह इस प्रार्थना के तर्क में चोर से भिन्न नहीं है। यही कारण है कि स्वायम्भुव मनु जैसा सम्राट भी अपने सिंहासन को बिना पीछे मुड़कर देखे त्याग सका — उन्होंने कभी संसार के न्यासी होने को उसके स्वामी होने के साथ भ्रमित नहीं किया (श्लोक 9-10)।

भगवान् यज्ञ अपने भक्त की रक्षा करते हैं

जब मनु इस गहन ध्यान में तल्लीन, स्वप्नवत् उस पावन प्रार्थना का जप कर रहे थे, तब भूख से पीड़ित असुरों तथा राक्षसों का एक समूह उन्हें निगल जाने के अभिप्राय से चारों ओर से टूट पड़ा। उनका दुष्ट संकल्प देखकर, सर्वव्यापी श्रीहरि वहाँ भगवान् यज्ञ के रूप में प्रकट हुए — वही देवता जो यज्ञ के अधिष्ठाता हैं, रुचि तथा अकूति से उत्पन्न — अपने पुत्रों, याम नामक देवताओं से घिरे हुए। उन्होंने आक्रमणकारी असुरों का संहार किया और तत्पश्चात् उस प्रथम मन्वन्तर भर स्वर्ग के अधिपति इन्द्र के रूप में शासन किया। यहाँ, अष्टम स्कन्ध की दहलीज़ पर ही, सम्पूर्ण ग्रन्थ का प्रमुख स्वर गूँज उठता है: जब भी कोई शरणागत जीव संकट में होता है, स्वयं भगवान् बिना विलम्ब आते हैं।



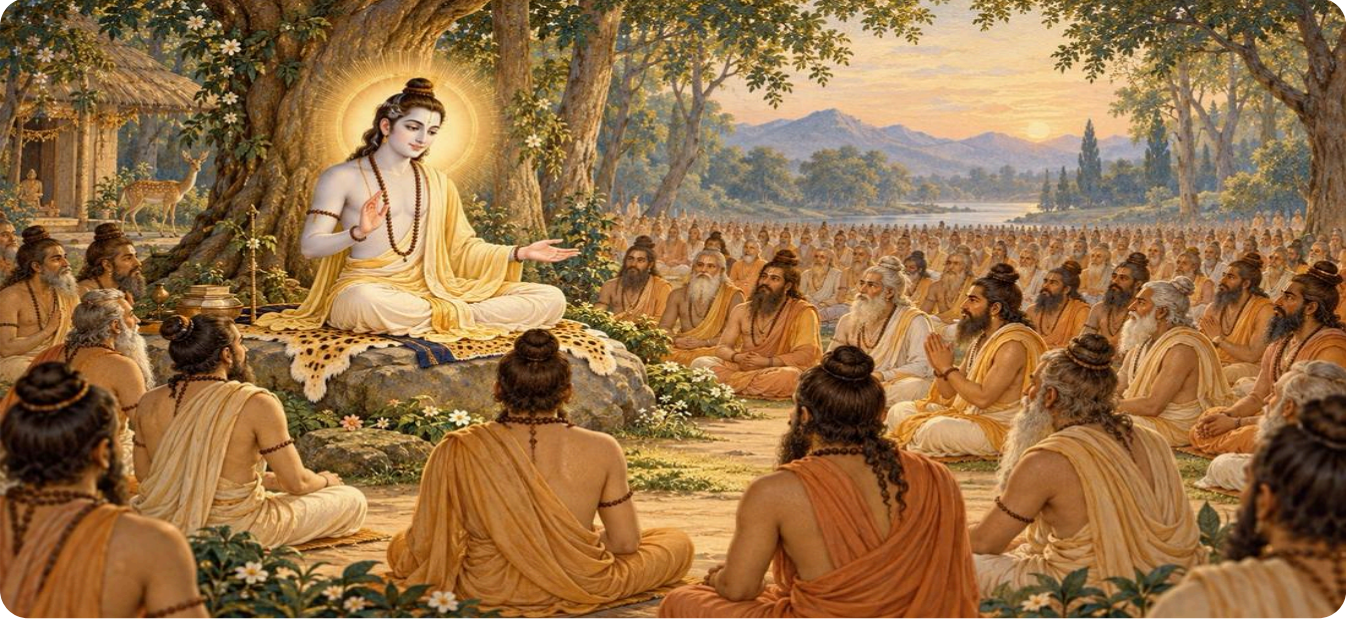
भगवान् यज्ञ रूप में, याम देवताओं से घिरे हुए प्रकट होते हैं, और उन भूखे असुरों का संहार करते हैं जिन्होंने ध्यान में लीन स्वायम्भुव मनु पर आक्रमण किया था (श्लोक 17-18)।

भगवान् याम देवताओं से घिरे हुए यज्ञ के रूप में प्रकट होकर उन भूखे असुरों का संहार करते हैं जिन्होंने ध्यानमग्न स्वायम्भुव मनु पर आक्रमण किया था (श्लोक 17-18)।

द्वितीय युग: भगवान् विभु के रूप में

तत्पश्चात् श्रीशुकदेव द्वितीय मन्वन्तर की ओर बढ़ते हैं, जिसके अधिपति अग्निदेव के पुत्र स्वरोचिष थे। उनके प्रमुख पुत्र द्युमान्, सुषेण तथा रोचिष्मान् थे; उस युग के इन्द्र का नाम रोचन था, और देवता तुषित कहलाते थे। सप्तर्षियों में ऊर्ज, स्तम्भ आदि थे, जो सभी वेद के व्याख्याता थे। उस युग में भगवान् स्वयं विभु के रूप में प्रकट हुए, जो सुनि वेदशिरा से उनकी पत्नी तुषिता के गर्भ से उत्पन्न हुए। विभु बाल्यकाल से ही आजीवन ब्रह्मचारी रहे, और उनके आदर्श से प्रेरित होकर अठासी हजार ऋषियों ने तप का व्रत ग्रहण किया तथा उसी अखण्ड ब्रह्मचर्य एवं आत्म-संयम के मार्ग का अनुसरण किया।





द्वितीय मनु के युग में भगवान् विष्णु रूप में प्रकट होते हैं, जो आजीवन संन्यासी हैं और जिनका आदर्श अठ्ठासी हजार ऋषियों को तपस्या अपनाने की प्रेरणा देता है (श्लोक 21-22)।

द्वितीय मनु के युग में भगवान् विष्णु के रूप में प्रकट होते हैं, जो एक आजीवन ब्रह्मचारी हैं और जिनका आदर्श अठ्ठासी हजार ऋषियों को तप अपनाने की प्रेरणा देता है (श्लोक 21-22)।

तृतीय युग: भगवान् सत्यसेन के रूप में



तृतीय मनु उत्तम, प्रसिद्ध सम्राट प्रियव्रत के पुत्र थे। उनके पुत्र पवन, सृजय, यज्ञहोत्र आदि थे; सप्तर्षि वसिष्ठ के पुत्र थे; देवता सत्य, वेदश्रुत तथा भद्र थे; और उस युग के इन्द्र सत्यजित थे। इस मन्वन्तर में परम पुरुष भगवान् सत्यसेन के रूप में प्रकट हुए, जो धर्म से उनकी पत्नी सूनृता के गर्भ से, सत्यव्रत नामक देवताओं के एक वर्ग के साथ उत्पन्न हुए। इन्द्र सत्यजित को अपना सहायक बनाकर, सत्यसेन ने उन दुष्ट यक्षों तथा राक्षसों का — जो असत्य तथा कुमार्ग में लगे थे — तथा उन दुष्ट प्रेत-समूहों का संहार किया, जो समस्त प्राणियों के शत्रु थे।



तृतीय मन्वन्तर में भगवान् सत्यसेन रूप में प्रकट होते हैं और इन्द्र सत्यजित के साथ प्राणियों को सताने वाले दुष्ट यक्षों, राक्षसों तथा दुरात्माओं का दमन करते हैं (श्लोक 25-26)।

तृतीय मन्वन्तर में भगवान् सत्यसेन के रूप में प्रकट होकर, इन्द्र सत्यजित के साथ, उन दुष्ट यक्षों, राक्षसों तथा दुष्ट प्रेतों का दमन करते हैं जो प्राणियों को सताते हैं (श्लोक 25-26)।

चतुर्थ युग और एक पूर्वघोषित उद्धार

चतुर्थ मनु तामस थे, जो उत्तम के भाई थे, और उनके दस पुत्र थे — पृथु, ख्याति, नर, केतु आदि। उस युग के देवता सत्यक, हरि तथा वीर थे; उनके इन्द्र त्रिशिख थे; और सप्तर्षि ज्योतिर्धाम आदि थे। उस युग में एक अन्य देवगण, विधृति के पुत्र वैधृति, ने अपनी बुद्धि के बल से उन वेदों को सुरक्षित रखा जो काल-क्रम में विस्मृत हो गए थे। और इसी तामस मन्वन्तर में भगवान् श्रीहरि के रूप में जन्मे, हरिणी से हरिमेध ऋषि के द्वारा — और इन्होंने श्रीहरि ने गजराज को एक भयंकर ग्राह की पकड़ से मुक्त किया।

तत्रापि जज्ञे भगवान्हरिण्यां हरिमेधसः ।

हरिरित्याहृतो येन गजेन्द्रो मोचितो ग्राहात् ॥ ३० ॥

tatrāpi jajñe bhagavān hariṇyāṁ harimedhasaḥ harir ity āhṛto yena gajendro mocito grahāt

अर्थ: उस युग में भी भगवान् जन्मे, हरिणी तथा हरिमेध ऋषि के पुत्र-रूप में, और हरि कहलाए — वही, जिनके द्वारा गजराज ग्राह की पकड़ से मुक्त किया गया। (स्कन्ध 8, अध्याय 1, श्लोक 30)



श्रीशुकदेव भविष्यवाणी करते हैं कि किस प्रकार चतुर्थ मन्वन्तर में भगवान् श्रीहरि रूप में गजराज को ग्राह से मुक्त करेंगे — गजेन्द्र की वही प्रिय कथा जिसे आगामी अध्याय विस्तार से कहेंगे (श्लोक 30)।

श्रीशुकदेव पूर्वघोषणा करते हैं कि किस प्रकार चतुर्थ मन्वन्तर में भगवान् श्रीहरि ने गजराज को ग्राह से मुक्त किया — गजेन्द्र की वही प्रिय कथा जिसे आगामी अध्याय पूर्णतः कहेंगे (श्लोक 30)।

एक प्रश्न जो इस स्कन्ध को खोलता है

गजराज के उद्धार का उल्लेख सुनते ही राजा परीक्षित और प्रतीक्षा नहीं कर पाते। श्रीशुकदेव को बादरायण-पुत्र सम्बोधित करते हुए वे पूरी कथा सुनने की प्रार्थना करते हैं: श्रीहरि ने ग्राह द्वारा पकड़े गए गजराज को किस प्रकार मुक्त किया? क्योंकि, वे कहते हैं, समस्त कथाओं में केवल वही कथा सचमुच पावन, प्रशंसनीय तथा मंगलमयी है जिसमें उत्तम-कीर्ति भगवान् की महिमा गाई जाती है। सूतजी, यह सब नैमिषारण्य के ऋषियों को सुनाते हुए, बताते हैं कि किस प्रकार श्रीशुकदेव — उपवास द्वारा प्राण-त्याग के लिए बैठे राजा की उत्कट प्रार्थना से प्रसन्न होकर — परीक्षित का अभिनन्दन करके, ध्यानपूर्वक सुनते ऋषियों की उस महान् सभा में, आनन्दपूर्वक वह कथा आरम्भ करते हैं जो आगामी अध्यायों को भरती है।

श्रीसूत उवाच

परीक्षितैवं स तु बादरायणिः

प्रायोपविष्टेन कथासु चोदितः ।

उवाच विप्राः प्रतिनन्द्य पार्थिवं

मुदा मुनीनां सदसि स्म शृण्वताम् ॥ ३३ ॥

śrī-sūta uvāca parīkṣitaivaṁ sa tu bādarāyaṇiḥ prāyopaviṣṭena kathāsu coditaḥ uvāca viprāḥ pratinandya pārthivaṁ mudā munīnāṁ sadasi sma śṛṇvatām

अर्थ: सूतजी ने कहा: इस प्रकार प्राण-त्याग हेतु उपवासरत परीक्षित द्वारा अपनी पावन कथाओं को आगे बढ़ाने की प्रार्थना किए जाने पर, बादरायण-पुत्र श्रीशुकदेव ने राजा का अभिनन्दन करके, ध्यानपूर्वक सुनते ऋषियों के मध्य, आनन्दपूर्वक कथा कही। (स्कन्ध 8, अध्याय 1, श्लोक 33)

इस अध्याय की मुख्य शिक्षाएँ

1. भगवान् प्रत्येक युग में लोक की रक्षा करते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर में भगवान् का अपना अवतार होता है — यज्ञ, विभु, सत्यसेन, श्रीहरि — जो दर्शाता है कि दैवी रक्षा कोई एक ऐतिहासिक घटना नहीं, अपितु समस्त काल में एक सतत, अटूट सत्य है (श्लोक 18, 21, 25-26, 30)।
2. तपस्या भगवान् को निकट ले आती है। स्वायम्भुव मनु की एक पाँव पर सौ वर्षों की तपस्या तथा उनकी शरणागत प्रार्थना का उत्तर स्वयं भगवान् की उपस्थिति से मिलता है — भक्त का निष्ठापूर्ण प्रयास दैवी तत्काल-प्रतिक्रिया से मिलता है (श्लोक 7-18)।
3. भगवान् की भाँति अनासक्त होकर कर्म करें। मनु की प्रार्थना सिखाती है कि भगवान् कर्म में प्रवृत्त होते हुए भी उससे अछूते रहते हैं, और जो अपने कर्म उन्हें समर्पित करते हैं वे भी बन्धन से मुक्त हो जाते हैं (श्लोक 14-16)।
4. जो प्राप्त है उसी पर जीएँ; किसी वस्तु की लालसा न करें। “उसी पर जीवन-निर्वाह करो जो उसने प्रदान किया है; किसी अन्य के धन की अभिलाषा मत करो” — एक ब्रह्माण्डीय प्रार्थना में गुँथी दैनिक जीवन की एक सरल, मर्मस्पर्शी शिक्षा (श्लोक 10)।
5. सचमुच सार्थक कथा वही है जो भगवान् की महिमा गाती है। परीक्षित के अपने शब्द हमें स्मरण कराते हैं कि ये कथाएँ आखिर क्यों कही जाती हैं: कोई कथन ठीक उतना ही पावन तथा मंगलमय है जितना वह परमेश्वर की महिमा का गान करता है (श्लोक 32)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय के विशाल विस्तार से अभिभूत हो जाना सरल है — छह मनु, असंख्य ऋषि तथा देवता, युगों पर युग, जब तक कि साधारण काल विलीन न हो जाए। किन्तु उस विशालता के भीतर कुछ अन्तरंग तथा आश्चर्य करने वाला छिपा है। वही भगवान् जो विश्व-युगों के चक्र का संचालन करते हैं, वही भगवान् एक एकाकी वन में एक पाँव पर खड़े एक वृद्ध सम्राट की रक्षा हेतु दौड़ पड़ते हैं, और एक कीचड़-भरे सरोवर में हाथ डालकर एक डूबते हाथी को बचाते हैं। मन्वन्तर हमारी लघुता का पाठ नहीं हैं; वे एक वचन हैं। हम चाहे किसी भी युग में जीएँ, सत्य चाहे कितना भी विस्मृत प्रतीत हो, ब्रह्माण्ड के रक्षक एक बार भी तब प्रकट होने में नहीं चूके जब किसी शरणागत हृदय ने उन्हें पुकारा। स्वायम्भुव मनु की प्रार्थना हमें वह मुद्रा दिखाती है जो इस कृपा को आमन्त्रित करती है: जो प्राप्त है उसी पर जीना, किसी वस्तु की लालसा न करना, अहंकार-रहित होकर कर्म करना, और उस एक की शरण लेना जो स्वयं मार्ग पर चलकर हमें मार्ग सिखाते हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज अपने दिन का एक छोटा-सा अंश लें — एक भोजन, एक कार्य, एक घंटे का श्रम — और आरम्भ करने से पूर्व उसे सचेत रूप से भगवान् को समर्पित करें, मन-ही-मन दोहराते हुए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” ऐसा करते समय, मनु की उस शिक्षा को स्मरण करें कि जो प्राप्त है उसी पर कृतज्ञतापूर्वक जीएँ और किसी अन्य की वस्तु की लालसा न करें। एक साधारण कर्तव्य भी, मनु की प्रार्थना के उन ऋषियों के कर्म की भाँति, एक ऐसी भेंट बन जाए जो आपको संसार से नहीं, अपितु उस भगवान् से बाँधे जो उसके परे निवास करते हैं।

उपसंहार

अष्टम स्कन्ध का यह प्रथम प्रवचन हमसे इसके मनुओं, ऋषियों तथा देवताओं को कण्ठस्थ करने की अपेक्षा नहीं रखता; यह हमें उस एक सत्य पर ध्यान देने के लिए कहता है जो इन सबसे परे सदा बना रहता है। युग उठते और गिरते हैं, राज्य ग्रहण किए तथा त्यागे जाते हैं, किन्तु जो भगवान् समस्त प्राणियों तथा समस्त तत्त्वों में व्याप्त हैं, वे कभी नहीं बदलते, और जिस भी युग में कोई शरणागत आत्मा रही हो, उन्होंने उसकी रक्षा करने में कभी चूक नहीं की। यही आश्वासन इस आरम्भिक अध्याय की वास्तविक भेंट है। और गजराज के विषय में परीक्षित के उत्सुक प्रश्न के साथ, गजेन्द्र-मोक्ष की उस कोमल किन्तु गम्भीर कथा का रंगमंच अब सज जाता है जिसे आगामी अध्याय प्रकट करेंगे।

श्रीमद्भागवत की दिव्य ज्ञान-ज्योति हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (सम्पूर्ण), अष्टम स्कन्ध, प्रथम प्रवचन, पृष्ठ 735-740।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुरूप प्रस्तुत। ॐ

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा भाष्य का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बद्धता अथवा उसके अनुमोदन का संकेत नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-8-chapter-1-the-manvantaras-described-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट